REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 7 | APRIL - 2024

"डॉ. शशिप्रभा शास्त्री के कथा लेखन में नारी के आर्थिक जीवन का अध्ययन"

उमा साकेत[1] , डॉ. ऊषा नीलम[2]
[1]शोधार्थी, हिन्दी विभाग , अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
[2]प्राचार्य , शासकीय इंदिरा गांधी गृह विज्ञान, कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र.)

सारांश –

युगों–युगों से शोषित नारी के लिए आधुनिक युग की सबसे बड़ी देन है उसकी आर्थिक स्वतंत्रता। आर्थिक स्वतंत्रता ने नारी की दुनिया को एक रोशनी से भर दिया है और इस प्रकार आधुनिक काल ने नारी को आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान कर उसकी आत्मा पर लगे उन घावों को भरने का प्रयास किया है जो समाज के नियम निर्माता पुरुष ने नारी को आर्थिक हिस्सेदारी से बाहर निकाल कर उसकी आत्मा पर लगाए थे। आर्थिक परनिर्भरता ने नारी को दोयम दर्जे का प्राणी बना डाला था। पर अब आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त कर भारतीय नारी परम्परावादी घरेलू नारी की तरह दबी सहमी नारी नहीं रही है बल्कि अब वह शिक्षित, जागरूक, चेतना सम्पन्न तथा अधिकार सजग नारी है। भिन्न–भिन्न मानसिकता वाली पारिवारिक नारियों का लेखिका ने न केवल चित्रण किया है वरन् उनकी मानसिकता की जिम्मेदार परिस्थितियों तथा कारकों का आर्थिक परिप्रेक्ष्य में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी किया है।

मुख्य शब्द – आर्थिक, स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण।

प्रस्तावना –

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री के अनुसार भारतीय नारी का उत्तरदायित्वपूर्ण, विवेकपूर्ण तथा ममतालु होना अति जरूरी है क्योंकि वे भारतीय नारी की उस स्वतंत्रता का समर्थन नहीं करती जो परिवार का ढांचा तोड़कर, पुरुष का संग छोड़कर, मातृत्व के रेशमी धागे को तोड़कर पाई जाये। उनका मानना है कि परिवार, व्यक्ति तथा समाज को व्यवस्थित रखने वाली गरिमापूर्ण व्यवस्था है इसलिए नए जीवन मूल्यों की तलाश करने वाली नारी को परिवार संस्था के विरुद्ध नहीं बल्कि शोषण और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करना चाहिए। प्रसिद्ध उपन्यासकार जैनेन्द्र का मानना है कि ''मैं समझता हूँ कि अपनी सामाजिक और पारिवारिक संस्थाओं का हमें फिर से लेखा जोखा लेना और वहाँ यथा आवश्यक संशोधन तथा संस्करण करना होगा। .... पुनश्चः पति–पत्नी एक–दूसरे की जायदाद नहीं है। दोनों अपने आप में व्यक्तित्व हैं। .... संबंध अगर परस्पर विश्वास और सौहार्द्र का होगा तभी उसमें रस या स्थायित्व रह सकेगा।''[1] नारी को उस दासता का विरोध करना चाहिए जहाँ नारी होने का अर्थ ही अपमान है। जहाँ शांतिपूर्वक जीवन जीने की शर्त है, अपनी सारी आकांक्षाओं को मारकर, समस्त कामनाओं को दूसरों पर न्यौछावर करके घुटघुट कर जीना तथा सहन करना। 'कर्क रेखा' के 'अनिंद्य' तथा 'तन्वी' के बीच के संबंध पुरुष की असंवेदनशीलता और तटस्थता की बर्फ के नीचे दबकर जम गए हैं। उनके संबंधों में प्रेम, अपनत्व, अधिकार, मान की कोई ऊष्मा नहीं, कोई हरारत नहीं, जो जीवन में गतिशीलता को प्रदर्शित कर सके। मध्यमवर्गीय पारिवारिक नारी के साथ सबसे बड़ी विडम्बना यह रही है कि वह अर्थोपार्जन में सक्षम नहीं होने के कारण जीवन में तथा परिवार में दोयम दर्जे की नागरिक बन जाती है।

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री ने अपने कथा–साहित्य में न केवल समस्याओं को ही उठाया है बल्कि कामकाजी महिलाओं की इन समस्याओं के समाधान भी सुझाए हैं। यह सच है और उपभोक्तावादी संस्कृति के मुँह की तरह असीमित गति से बढ़ती जा रही है और उपभोक्तावादी संस्कृति से प्रभावित होकर हमारी जरूरतें भी दिन–प्रतिदिन बढ़ रही हैं। ऐसे में सिर्फ पुरुष की कमाई से घर का गुजारा एक मुश्किल काम है। उधर नारी के शोषण को रोकने, उसे सशक्त बनाने तथा उसमें आत्मविश्वास पैदा करने के लिए नारी का आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनना भी जरूरी है। ऐसे में अगर हम अपने नजरिए में थोड़ा सा परिवर्तन कर लें तो कामकाजी नारी का शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक प्रताड़ना तथा यौन शोषण रुक सकता है।

विश्लेषण –

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री ने भारतीय परिवेश में समाज की पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता के कारण प्रताड़ना, उपेक्षा, अत्याचार तथा अन्याय को मुँह सीकर सहने वाली नारियों का पूरी सहानुभूति के साथ चित्रण किया है पर साथ ही जब उनकी चेतना सम्पन्न अन्याय तथा अत्याचारों के खिलाफ 'अब और नहीं' का उद्‌घोष करती हुई अपनी मुक्ति की राह पर निकल पड़ती है तो वे उनके साहस के लिए न केवल उनकी पीठ थपथपाती है बल्कि पथ–प्रदर्शक बन उनका मार्गदर्शन भी करती हैं।

उपन्यास 'कोडवर्ड' की नायिका ''मीना'' तथा मीना की माँ ''सरला'' ऐसी ही आर्थिक रूप से परावलम्बी तथा चेतनाविहीन नारियाँ हैं। मीना की माँ सरला पूरी तरह परम्परागत मानसिकता वाली नारी है। पिता ने अपने से उम्र में बड़े, जुआरी आदमी के साथ बांधा, बंध गई। पति ने कभी भावनाओं तथा भौतिक, शारीरिक जरूरतों का ख्याल नहीं रखा, मारपीट करता रहा, सहती रही। उसके बच्चों को जन्म दे उसका कुल बढ़ाती रही। समवयस्क देवर ने आर्थिक तथा शारीरिक जरूरतों की पूर्ति का प्रलोभन देकर समर्पण को उकसाया तो, समर्पित हो गई। रखैल तथा पत्नी का दोहरा जीवन जीती रही। बच्चों के समक्ष शर्मिन्दगी महसूस करती रही। अपने कर्मों के लिए अपराध बोध तथा ग्लानिबोध के नीचे दबकर मर गई। पूरे व्यक्तित्व में चेतना की कोई सरसराहट नहीं। क्या? क्यों? कैसे? की कोई अकुलाहट नहीं। समर्पण! सिर्फ समर्पण। फिर भी ना तो समाज ने, ना पति तथा बच्चों ने सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार उसे प्रदान किया। पति ने, देवर ने, बच्चों ने तथा समाज ने यहाँ तक कि उसके अपने मन ने भी उसे प्रतिपल धिक्कारा। यही धिक्कार उसकी असामयिक मौत का कारण बना। अपने बेमेल विवाह का कारण बताती हुई वह कहती है – ''जिस घर में नौ खाए तेरह की भूख बनी रहे, उस घर की लड़कियों को जहाँ–तहाँ ऐसे ही डाला जाता है .... मैं मुश्किल से पन्द्रह की रही होऊँगी .... तेरे बाबूजी उस समय मुझसे तीन गुनी उम्र के थे।''[2]

देवर के समक्ष अपने समर्पण का कारण बताते हुए वह कहती है – ''जो आदमी घर का सर्वेसर्वा बन जाता है, जर से लेकर जमीन और औरत का स्वामी भी वही होता है। मेरे साथ भी यही हुआ। मैं अनपढ़, गंवार, अपने को बचाकर कहाँ तक ले जा सकती थी। तेरे बाबू में सट्टे का दांव हारते रहने के साथ दूसरे किसी भी दांव को बचाकर रखने की ताकत नहीं रह गई थी।''[3]

''कोडवर्ड'' उपन्यास की नायिका ''मीना'' भी इसी तरह परिस्थितियों के समक्ष समर्पण करने वाली लड़की है। वह उस अपराध के अपरोध बोध से ग्रसित है जो अपराध उसने किया ही नहीं। इंसान चाहे अतीत में कितने ही बुरे कर्मों से जुड़ा रहा हो, अगर वह अपना वर्तमान तथा भविष्य सुधारना चाहे तो, अपने विवेक, आत्मबल तथा निश्चयात्मिका वृत्ति के बल पर पतन के दलदल से बाहर आ सकता है। पर मीना तो ऐसा चरित्र है जो अपने माता–पिता के कुकर्मों का अपराधबोध खुद पर लादकर अच्छी भली जिंदगी को छोड़ पतन की गंदगी में धंसती चली जाती है। पढ़ी–लिखी नारी होने के बावजूद ना तो वह अपनी माँ में आत्मबल का विकास कर पाती है, ना स्वयं ही सुदृढ़ व्यक्तित्व के रूप में जीवन की चुनौतियों का सामना कर पाती है। मीना की माँ ने अपनी दैहिक तथा आर्थिक मांगों की पूर्ति के लिए वृद्ध तथा जुआरी पति के साथ धोखा किया तथा देवर के साथ शारीरिक संबंध बनाए। मीना इसी संबंध की संतान थी। मीना ने अपने जन्म की अवैधता को ही अपने हंसते–खेलते जीवन के लिए ग्रहण बना लिया। माता–पिता के कर्मों के लिए स्वयं ग्लानि महसूस कर स्वयं को मानसिक तथा शारीरिक पीड़ा पहुंचाती रही। बुरे लड़कों की संगत में पड़कर उनके साथ शराब पीना, रंगरेलियां मनाना जैसी ओछी हरकतें करती रही। उसमें शिक्षा ना तो आत्मबल तथा नैतिक बल का विकास कर पाई और ना ही स्वतंत्र सोच को जन्म दे पाई। अपने प्रति हीन भावना से ग्रस्त वह कहती है–''मुझमें तो अब किसी सपने

को साकार करने की तमन्ना ही नहीं रह गई है। भटकने जैसी एक आदत पड़ गई है, मानो आवारागर्दी किए बिना अब मैं जी ही नहीं सकती। आपकी मीना अब बहुत खराब हो गई है नवीनाजी। बिल्कुल बिगड़ गई है, अब आप मुझसे घृणा करो, मुझे खत्म कर दो.......।....... मैं प्यार की उन गंदी गलियों में घूम रही हूँ, जिनमें सिर्फ गंदे माँ–बाप के बच्चे घूमते हैं। मैं गंदे माँ–बाप की लड़की हूँ, खुद गंदी हूँ।''[4] मीना थोड़े से आत्मबल की बिना पर खुद अपनी माँ को मरने से रोक सकती थी, खुद अपने जीवन को संवार सकती थी, पर वह परिस्थितियों से लड़ी नहीं, बल्कि उनके समक्ष हथियार डाल दिए। यहाँ नारी की आर्थिक परनिर्भरता नारी के शोषण का कारक बनती है।[5]

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री कृत उपन्यास ''क्योंकि'' की एक पात्र ''श्यामा केजरीवाल'' भी एक ऐसी ही कमजोर नारी है। आर्थिक रूप से स्वावलम्बी, पढ़ी–लिखी होने के बावजूद वह उस पुरुष से विवाह करने को तैयार हो जाती है जो दहेज के रूप में इतना धन माँग रहा है कि उसकी पूर्ति के लिए उसकी बूढ़ी माँ को अपना पैतृक घर बेचना पड़ता है। शादी के बाद सास दहेज के रूप में दिए गए जेवरों को समेट कर रख लेती है और श्यामा को नंगी–बुच्ची करके छोड़ देती है। पति भी उसका सम्मान नहीं करता, प्रेम तथा सहयोग नहीं देता, तब भी वह कोई विरोध नहीं करती। उसका मानना है कि 'शक्ल–सूरत' अच्छी न होने के कारण उसे इतना तो सहना ही होगा। ऐसे विवाह का विरोध न करने का कारण बताती हुई श्यामा कहती है – ''और मैं विरोध क्यों करती, माँ को मुझे ब्याहने की चिंता थी और बदसूरत लड़की कोई ग्राहक नहीं मिल रहा था, यानि बिना लिए–दिए, तो यह मांग उन्हें कहीं से भी पूरी करनी पड़ी ......।''[6]

''और मैं विरोध क्यों करती, माँ को मुझे ब्याहने की चिंता थी और बदसूरत लड़की का कोई ग्राहक नहीं मिल रहा था, यानि बिना लिए–दिए, तो यह माँग उन्हें कहीं से भी पूरी करनी पड़ी........।''

''...........मुझे उतना कुछ ले जाकर भी क्या–क्या नहीं सुनना पड़ता। कैसे बताऊँ इसलिए जेवर का जिक्र मैं उनसे कभी नहीं करती, फिर रूप का भी उतना गुमान करने लायक नहीं हूँ, तो कहूँ भी तो क्या?''[7] इस संबंध में सुधारानी श्रीवास्तव का कहना है कि ''दहेज अधिनियम की धारा 3 में दहेज लेने वाले के लिए दण्ड का विधान है। इसे संज्ञेय अपराध की श्रेणी में रखा गया है।''[8] पर ये कानून नारी की मदद तब करेंगे जब नारी स्वयं जागृत हो।

सच तो यह है कि मीना, सरला तथा श्यामा केजरीवाल जैसे पात्र जब मानव जीवन की गरिमा नहीं जानते तो उसका सम्मान कैसे कर पायेंगे? उन्होंने अपने नारी होने को ही इतना बड़ा अपराध मान लिया है कि उसकी हर सजा भुगतने को वे स्वयं ही तैयार है तो फिर नारी शोषण में माहिर पुरुष वर्चस्ववादी समाज, परम्पराएं उन्हें क्यों छोड़ेंगे? इस संदर्भ में दहेज जैसी कुरीतियाँ तथा नारी में जागृति का अभाव नारी के शोषण का जिम्मेदार है।

पुरुष की सामन्तवादी मानसिकता को अपनी नियति मान स्वीकारने वाली तथा उसकी पोषक पारिवारिक नारियाँ भी लेखिका के कथा साहित्य में काफी संख्या में है। ''अमलतास'' की कामदा की सास तथा राजा अजीत सिंह की पत्नी (रानी साहिबा) ऐसी ही नारियाँ हैं। यहाँ धन पुरुष को सत्ता का मद, कुव्यसन, अहंकार विरासत में देता है तथा नारी को गुलामी प्रदान करता है।

कामदा का पति हरदेव विवाह के पश्चात् अपनी पत्नी को घर में छोड़ स्वयं जवानी, सत्ता तथा धन के मद में चूर गुलछर्रे उड़ाने में मशगूल रहता है। घर में सुंदर, सुघड़, गुणवान पत्नी अपने पति की एक झलक पाने के लिए, पति का सान्निध्य पाने के लिए बेचैन है। लम्बे इंतजार के बाद आने वाली मधुयामिनी की रात्रि को ही जब वह नशे में धुत अपने पति के मुख से अपने सौन्दर्य की तुलना किसी बाजारू औरत ''जन्नत बेगम'' के सौन्दर्य से की जाती हुई सुनती है तो अपमान से कट कर रह जाती है। वह जब जानती है कि उसका पति, पत्नी के निर्दोष–निष्कलुष प्रेम तथा सौन्दर्य का पुजारी नहीं वरन् गंदे गढ्ढों का पानी पीने का आदी है तो वह पति के प्रति कटु विरोध से भर जाती है। पर कामदा की सास को अपनी बहू का अपने पुत्र के प्रति यह रवैया कतई पसंद नहीं आता। वह अपनी पुत्रवधू को बार–बार समझाती है कि घर, महल, नौकर–चाकर, कपड़े–गहने, मौज–मस्ती में रहो तथा पति से जब जितना मिल जाए उसी में संतोष करना ही बड़े घर की बहुओं का धर्म होता है। पति पर रोक–टोक, बहस आदि यह सब कुलीन स्त्रियों के ढंग नहीं है। अपने पुत्र के तौर–तरीकों को सही ठहराती हुई सास कामदा से कहती है–''अब तुम समझो कि हमेशा लड़के की गोद में बैठी लड़ियाती रहो, सो तो होगा नहीं आदमी जात है, सो दस जगह बाहर आएगा–जाएगा भी, रहा यह कि वो तुम्हारे पास बहुत

नहीं बैठता, सो लाड़ो, बड़े घर की बहुओं के नसीब में तो जितना मिल जाए उतना ही बहुत समझ लो। तुम्हारी कोख में एक लाल डाल दिया, यही क्या कम है? हमारे तो यह समझो कि पूरे सात साल बाद हरदेव पेट में आया था। सो ज्यादा मान करना औरत जात को नहीं सुहाता, बहुरानी। तुम अपने मान गरूर में बैठी रहो, सोचो कि लड़का आकर तुम्हारे तलुवे सहलाएगा, सो तो मेरे हरदेव से होगा नहीं। तहजीब–सलीके से रहो, जितना मिल जाए उसमें संतोष करो और मजे से खाओ, पहनो। हमने तो यही चाल कुलीन घरों की बहुओं की देखी है और यही हम अपने घर की बहू से भी चाहती हैं।''[9]

पुरुष की सामन्तवादी मानसिकता की पर्याय बन चुकी कामदा की सास का मानना है कि नारी की सम्पत्ति है, नारी के मन, उसके शरीर पर पुरुष का ही हक है। पुरुष के किसी भी कर्म पर प्रश्न–चिन्ह लगाना नारी के लिए शोभनीय नहीं है। नारी को घर परिवार, बाल बच्चों में ही संतुष्ट रहकर, जो कुछ पुरुष ने उसे दिया है, उसके लिए अपने को धन्य मानना चाहिए। पुरुष नारी को उसका शुक्रगुजार होना चाहिए। नारी चूँकि नारी है इसलिए उसे तप और संयम से रहना चाहिए, जबकि पुरुष तो पुरुष है इसलिए उसे कुछ भी करने का अधिकार है। उधर महारानी मगनवती का भी मानना है कि पुरुष स्वभाव से ही इधर–उधर मुँह मारने वाला होता है, इसके लिए नारी को विशेषकर ब्याहता पत्नी को चिंतित नहीं होना चाहिए क्योंकि उसके घर की मालकिन, उसके बच्चों की माँ, तथा समाज के समक्ष उसकी परिणीता वही है। अपने मुँह का जायका बदलने के लिए पुरुष का इधर–उधर भटकना कोई गुनाह नहीं है, तभी तो वे कहती हैं – चिंतित नहीं होना चाहिए क्योंकि उसके घर की मालकिन, उसके बच्चों की माँ तथा समाज के समक्ष उसकी परिणीता वही है। अपने मुँह का जायका बदलने के लिए पुरुष का इधर–उधर भटकना कोई गुनाह नहीं है, तभी तो वे कहती हैं–''अरे मुर्दुओं की भली चलाई, आदमी की तो जात ही ऐसी होती है कि जब तक वह दस जगह मुँह न जुठार लें, उन्हें चैन ही नहीं आती।''[10]

''बहन! राजा–महाराजाओं और रईसों के तो ये रात–दिन के चोचलें होते हैं, उनके लिए तो यह बहुत मामूली बात है कि विवाह किसी से किया, घराता किसी से किया। पर इस सबके बारे में हम माथा–पच्ची क्यों करें? हम नारियों के भाग्य की तो यही विडम्बना है। मुँह का स्वाद बदलने के लिए भी तो आखिर आदमी को कुछ चाहिए ही।''[11]

समाज के दोहरे नैतिक मानदण्डों के खिलाफ, पुरुष की सामन्तवादी मानसिकता के खिलाफ कोई विरोध नहीं, कोई विद्रोह नहीं। नारी स्वयं यह मान चुकी है कि पुरुष तो ऐसा करेगा ही, यह उसका अधिकार है, पर वह यह भूल रही है कि उसे यह अधिकार देकर नारी स्वयं अपना ही शोषण करवा रही है। नारी होकर नारी की भावनाओं को समझने में असमर्थ ये नारियाँ शायद अपनी स्वयं की आशाओं, आकांक्षाओं, भावनाओं का दमन करते–करते पत्थर बन चुकी हैं। पुरुष ने सामन्तवादी मानसिकता तथा नैतिकता के दोहरे मानदण्डों के जिन कोड़ों द्वारा इनका शोषण किया अब ये वही कोड़े लेकर अपनी बहू–बेटियों को प्रशिक्षित करने में लगी हैं। ऐसी ही माँ, दादी और सास के प्रशिक्षण ने भारत में चेतनाविहीन, आत्मसम्मानहीन नारियों की फौज तैयार कर दी है। 'अमलतास' उपन्यास में पुरुष के पास धन का आधिक्य तथा स्त्री की आर्थिक परनिर्भरता नारी शोषण की कारक है।

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री की कहानियाँ जहाँ पारिवारिक नारी को ''स्त्री ही स्त्री की शत्रु'' के रूप में भी प्रस्तुत करती है, वहीं ''स्त्री को स्त्री की सहयोगिनी'' के रूप में भी चित्रित करती है।

कहानी 'चयन' की नायिका सुरीली को शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित होकर घर नहीं छोड़ना पड़ता अगर उसकी सास तथा जिठानी सुरीली का सहयोग करतीं, उसकी समस्या को समझतीं। अगर वे सुरीली की तरफ बुरी नजर से देख रहे घर के पुरुषों की शह ले, उनकी गलत हरकतों को संरक्षण नहीं देती तो सुरीली के साथ अत्याचार न होता। इससे न केवल नारी को अपना अधिकार मिलता, बल्कि पुरुष की वहशी प्रवृत्ति पर भी अंकुश लगता। पर घर की बड़े पर वाली नारियों ने पुरुषों की गलत हरकतों का सहयोग कर नारी शोषण को ही बढ़ावा दिया। सुरीली के प्रति देवर, जेठ का व्यवहार पारिवारिक हिंसा का क्रूरतम रूप है। परिवार, जिसके विषय में हमारी मान्यता है कि नारी वहाँ सुरक्षित है, में भी सौतेलों के साथ–साथ निकटतम संबंधियों मामा, चाचा, ताऊ, जेठ, देवर, ससुर के हाथों नारी यौन उत्पीड़न का शिकार बनती है। ये अनाचार घरेलू दबाव, सामाजिक भय, नारी के स्वयं के अज्ञान के कारण घर की दहलीज से बाहर नहीं आ पाते।

कहानी 'अतिरिक्त' की बहू अगर संवेदनशील होती, सास की मजबूरी समझती तो, सास को 'छुटंकू' के जन्म के लिए तानों–तकाजों से शर्मिंदा ना करती। सास को कुएँ में कूदकर अपनी इहलीला समाप्त न करनी पड़ती। यह जानकर भी कि भारतीय पारिवारिक व्यवस्था में नारी की देह, उसकी प्रजनन की क्रिया पुरुष द्वारा नियंत्रित है और स्त्री विवश है। बहू सच्चाई को नकार कर सास को प्रताड़ित करती है। परिणाम होता है एक निर्दोष, समर्पित नारी जीवन का अंत।

कहानी 'गुम्बद' में एक विधवा नारी के जीवन संघर्ष के प्रति असंवेदनशील बहू का गैरजिम्मेदाराना, शुष्क रवैया अत्यंत अशोभनीय है, अमानवीय है। परित्यक्ता होने की पीड़ा झेल चुकी बहू, संवेदनशील होने के बजाय शुष्क और कठोर हो गई। सास का जीवन, उसकी वृद्धावस्था खुशियों से भर जाती, अगर बहू उसके श्रम, समर्पण, संघर्ष के प्रति सम्मान प्रदर्शित करती तथा सास को अपने शौक के साथ स्वतंत्रतापूर्वक जीने में सहयोग करती।

जीवन के उतार–चढ़ाव, नारी की जन्मजात संवेदनशील, उसका समर्पण तत्व कई बार पारिवारिक नारी को इतना अधिक उदार तथा स्वतंत्रचेता बना देता है कि पुरुष नियंत्रित समाज के कठोर, नारी विरोधी नियमों–परम्पराओं को धता बताकर वह नारी की सहयोगिनी बनकर नारी मुक्ति के संघर्ष को एक कदम आगे बढ़ा देती है।

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री की कहानी 'एक और एक' इसका खूबसूरत उदाहरण है। दादी सास भूख–प्यास से पीड़ित हो, अपने ऊपर लगाए जा रहे मनहूसियत के आरोपों के आहत हो, प्रेम–अपनत्व और सम्मान की कुछ बूंदों को तरसती हुई एक दिन कुएं में कूद आत्म हत्या करने के लिए निकल पड़ती है, पर ऐन समय पर पौत्र बहू सामने आकर खड़ी हो जाती है और दिलासा देते हुए अपनी दादी सास को बचा लेती है–''नहीं ददिया .... नहीं! आप तो मेरी दादीजी हैं; मैं आपकी बेटी, बहू, बच्ची–हम दोनों जिंदा रहेंगे, इन लोगों के कहने से नहीं मरेंगे न ददिया? .... मैं आपकी इसकी कोठरी में .... नहीं – नहीं ...... ददिया, आप मेरे साथ मेरे कमरे में रहेंगी।''[12]

घर की चार दीवारी के भीतर एक सामान्य पारिवारिक नारी का यह छोटा सा कदम नारी अस्मिता के संघर्ष को एक झटके से इतना आगे बढ़ा देता है जितना वह दशकों के नारों, वादों, आंदोलनों, सम्मेलनों तथा कानूनों के बाद भी नहीं पहुँच पाता।

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री की कुछ रचनाओं में पारिवारिक नारी का व्यवहार दो अतियों में दिखाई देता है। एक तरफ परिवार के परम्परागत ढांचे के अंतर्गत जी रही 'समानान्तर' कहानी की नायिका 'शोभना' जैसी स्त्रियाँ हैं तो दूसरी तरफ 'पठार' कहानी की नायिका 'नीलिमा' जैसी स्त्रियाँ हैं जो परिवार के परम्परागत ढांचे में बिल्कुल भी विश्वास नहीं करती हैं।

शोभना अपने परिवार को व्यवस्थित करते–करते अपनी सारी जवानी गंवा देती है। विवाह की आकांक्षा रखती है, पर बढ़ती उम्र से चिंतित है। विवाह करना चाहकर भी अपने विवाह के निर्णय से ऐन वक्त पर पीछे हट जाती है क्योंकि वह मानती है कि लड़की के विवाह का निर्णय उसके परिवार के बड़े सदस्य ही लेते हैं, जबकि इस तथ्य से वह भलीभांति परिचित है कि परिवार के किसी सदस्य को उसके विवाह में कोई दिलचस्पी नहीं है। इस बार विवाह का अवसर चूक जाने का अर्थ है पूरा जीवन अविवाहित ही बिताना।

दूसरी ओर नीलिमा बड़े–बड़े बच्चों की माँ होने के बाद भी सिर्फ अपनी अनियंत्रित काम वासना की तृप्ति के लिए पति से अलग रहकर, नए–नए पुरुषों को अपने प्रेमजाल में फांसकर अपनी शारीरिक भूख मिटाती है और उनका घर उजाड़ती है।

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री दोनों ही अतियों के खिलाफ है। वह पारिवारिक नारी के उस दब्बूपन के भी खिलाफ है जो मानव जीवन के गरिमामय रूप को बदशक्त होते देखकर भी चुप है। वह उस नारी का समर्थन भी नहीं करती जो मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निर्णय लेने में ढीलापन दिखाती है तथा अपने जीवन को विवेक का दामन थामकर भरपूर तरीके से भारतीय जीवन परम्पराओं के साथ जीने का साहस नहीं दिखाती।

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री उस स्वच्छंद नारी के भी खिलाफ है जो सिर्फ शारीरिक संतुष्टि के लिए उस बरसाती नदी की तरह से बहती है जो नैतिकता, आदर्शों, मूल्यों के तटों को तोड़कर बेलगाम दौड़ती है, सिर्फ अपने शरीर के लिए। सामाजिक सरोकारिता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व का जिनके जीवन में कोई मोल नहीं।

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री की मजदूर नारी अपने आर्थिक स्वावलम्बन के कारण स्वाभिमानी भी होती है। स्वाभिमान भी इतना कि वह किसी के सहारे, किसी की कृपा पर जीना नहीं चाहती है। अपनी रूखी–सूखी खाकर भी वह शान से जीना चाहती है। धन्नों को अपने पति ठाकुर सिंह की बड़े बाबू की बेगार ढ़ोना कतई पसंद नहीं है। अतः वह अपना अंतिम निर्णय सुनाती हुई कहती है – "कुछ भी हो, जी, मैं तुम्हें बड़े बाबू का पाखाना ढ़ोने नहीं दूँगी, नहीं तो देख लेना, चली जाऊँगी, जहाँ जी चाहेगा।"[13]

कहानी "अगरबत्ती" की भूपी तो अपने स्वाभिमान के आहत होने से इतना झुरती है कि स्वयं ही अगरबत्ती हो जाती है। पल–पल जलती, राख होती अगरबत्ती। कारण कि अभावों से मुक्ति पाने के लिए उसकी बेटी उम्र में पिता समान, पैसे वाले पुरुष से विवाह कर लेती है। अपनी माँ तथा भाई पर दबाव डालती है कि वे भी उसके पति के बड़े से घर में आकर सुखपूर्वक रहें। पति की नाराजगी को कारण बताकर वह अपनी माँ के घर आकर एक दिन भी रहना नहीं चाहती। बड़ी उम्र के जमाता को भूपी जैसे–तैसे सह लेती है, पर अपनी ही बेटी के मुख से अपने स्वाभिमान को चोट पहुँचाने वाले प्रस्ताव को वह झेल नहीं पाती। जिन्दगी पर हाड़तोड़ मेहनत करने वाली भूपी, संघर्षों से नहीं हारती पर अपने स्वाभिमान पर चोट लगने से हार जाती है। अपनी किराए की खोली में वह मस्त है, पर जमाता के महलनुमा घर का प्रस्ताव उसे नहीं भाता।

ईश्वर के प्रति अंधी आस्था मजदूर वर्ग की नारी में कूट–कूटकर भरी होती है। वह इसी आस्था के बल पर बड़े से बड़े को पहाड़ को भी ढो लेती है। भूपी के लिए चाहे अपनी जवान–जहान बेटी के लिए विवाह की समस्या हो, चाहे जवान बेटे की नौकरी या पढ़ाई का मसला, हो, या फिर मकान मालिक द्वारा घर से बाहर निकाल देने की दिक्कत हो, वह तो एक ही टिप्पणी करती है–"मुझे कोई फिकर नहीं है। करने वाला भैनजी वही है ऊपर वाला। हमारी परिच्छा ले रहा है।"[14]

नारी मुक्ति की सबल पैरोकार डॉ. शशिप्रभा शास्त्री निजी तौर पर मर्दों से घृणा करने की पक्षधर नहीं है। पुरुष की काम–लोलुपता, उसके नारी शोषण से आहत भी वे स्वतंत्र मानवीय सत्ता के रूप में पुरुष का सम्मान करती हैं। उनकी कामना यही है कि नारी के प्रति पुरुष का सम्मान करती हैं। उनकी कामना यही है कि नारी के प्रति पुरुष की छिछली प्रवृत्ति का अंत हो तथा स्त्री–पुरुष मिलकर सौमनस्य के साथ रहें, एक–दूसरे के सहयोगी, संगी, साथी बनकर रहें, शोषक, उत्पीड़क या प्रतिद्वन्द्वी बनकर नहीं। इसी कारण उनकी नौकरीपेशा, शिक्षित, उच्चवर्गीय तथा मध्यमवर्गीय नारी के साथ–साथ मजदूर नारी भी पुरुष से मुक्ति पाने का प्रयास नहीं करती। मुक्ति पाना चाहती है तो वे पुरुष के शोषण से, उसकी उत्पीड़क प्रवृत्ति से, उसकी ओछी सोच से। पुरुष से बदला लेने का प्रयास नहीं करतीं। प्रतिशोधी नहीं बनती। लेखिका मानती है कि नारी अगर अवसर पाकर पुरुष से बदला लेने निकल पड़ी तो नारी शोषण का चक्र पुरुष शोषण में बदल जायेगा। उत्पीड़न की शक्ल बदल जायेगी, किरदार बदल जायेंगे पर शोषण का अंत नहीं होगा।

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नारी का जीवन अब इतना विकट नहीं रहा, जितना कि स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले था। शिक्षा की किरण ने नारी के जीवन को आर्थिक आत्मनिर्भरता तथा आत्मविश्वास के आलोक से ऐसा भर दिया है कि अब जीवन के हर क्षेत्र में नारियाँ ही नारियाँ दिखाई पड़ रही हैं, जो सजग है, जिम्मेदार हैं, कार्यकुशल तथा कर्मठ हैं। आज से 50–60 वर्ष पूर्व ऐसा नहीं था। उस समय एक नारी का पढ़ना और पढ़ने के लिए स्कूल जाना भी चर्चा का विषय बन जाता था। पर अब बात ही दूसरी है। नारी की दुनिया बहुत बदल गई है, विशेषकर मध्यमवर्गीय नारी की। अब पुरुष भी नारी की शिक्षा, उसके कैरियर निर्माण में सहयोगी बनने लगा है। मानने लगा है कि नारी की आर्थिक आत्मनिर्भरता परिवार में, जीवन के खुशहाली लायेगी। नारियों के जीवन में रोशनी भर दी है। यह सच है कि कामकाजी नारी नई समस्याओं से जूझ रही है, पर ये समस्याएँ भी समय के साथ–साथ सुलझा ली जायेंगी। पुरुष भी अब पहले की तुलना में काफी हद तक सकारात्मक है तथा नारी भी विवेकशील है। दोनों हर पल बदलती दुनिया की तथा समय की धारा पहचान रहे हैं तथा उसके अनुकूल अपने को ढ़ालने को तैयार हैं। नारी अब चाहे वह घरेलू हो या कामकाजी, अकेली हो या पारिवारिक, पढ़–लिखकर राजनीति में हिस्सा लेने वाली हो, या ईंट–गारा ढ़ोने वाली मजदूर, अपने–अपने मोर्चे पर तैनात, अन्याय को समझ कर उसका प्रतिकार करने के लिए प्रतिबद्ध है। डॉ. शशिप्रभा शास्त्री की मजदूर नारी भी स्वाभिमानी तथा अपने अधिकारों के प्रति सजग है। उनकी कामकाजी नारी भले ही अनेक

समस्याओं से घिरी है, कई स्तरों पर शोषण की शिकार है, पर मानसिक रूप से बेहोश नहीं है, शोषण के कारण भीतर ही भीतर उपजती प्रतिक्रिया ही उसकी मुक्ति का रास्ता है। यह प्रतिक्रिया, यह मूक विरोध अपने लिए दिन मुक्ति का रास्ता अवश्य तलाश लेगा। डॉ. शशिप्रभा शास्त्री की घरेलू नारी भी नारी मुक्ति की विरोधी सामन्तवादी ताकतों के बीच भी अनेक प्रश्नाकुलताओं से ग्रसित है। यह प्रश्नाकुलता उसे ना तो अपनी आर्थिक विपन्नता के बीच, ना अपने महलों के असीम सुखों के मध्य चैन से जीने देती है, ना सुख से मरने देती है। उसकी समस्त प्रश्नाकुलताएं उसे मनुष्य बनाने की तरफ आगे बढ़ाती है। यही अकेला सफर उसे लम्बे संघर्ष के बाद एक दिन सम्मानपूर्वक जीने का चिर प्रतीक्षित सुख देता है।

संदर्भ –

[1] जैनेन्द्र कुमार – जीवन, समय और स्वतन्त्रता, पृष्ठ 143–145
[2] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री–कोडवर्ड, पृष्ठ 11
[3] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री–कोडवर्ड, पृष्ठ 12
[4] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री–कोडवर्ड, पृष्ठ 88
[5] डॉ. विमला वर्मा – साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप, पृष्ठ 42
[6] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री – क्योंकि, पृष्ठ 6
[7] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री – क्योंकि, पृष्ठ 7
[8] सुधारानी श्रीवास्तव – महिलाओं के प्रति अपराध, पृष्ठ 56
[9] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री – अमलतास, पृष्ठ 90
[10] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री – अमलतास, पृष्ठ 72
[11] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री – अमलतास, पृष्ठ 73
[12] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री – एक और एक (संकलन–एक टुकड़ा शांतिरथ), पृष्ठ 153
[13] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री – जोड़ बाकी (कहानी संग्रह), पृष्ठ 32
[14] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री – अगरबत्ती (कहानी संग्रह), पृष्ठ 7